ओंकार उपासना

ओंकार उपासना मूल्य ≡) तीन आना।

सत्यानन्द सरस्वती।

ओंकार उपासना।

लेखक —

पूज्यपाद स्वामी

सत्यानन्द सरस्वती जी महाराज

प्रकाशक—

राजपाल—मैनेजर

आर्य्य पुस्तकालय सरस्वती आश्रम

अनारकली, लाहौर।

अमृत प्रेस, अमृतधारा भवन, लाहौर

द्वारा मुद्रित।

तीसरी बार २०००] मार्च १९२२ [मूल्य।)

श्री स्वामी सत्यानन्द जी रचित अन्य पुस्तकें।

दयानन्द प्रकाश—भक्ति भावमें लिखा हुआ स्वामी दयानन्द जी का सचित्र जीवन चरित्र सजिल्द २)

सन्ध्या योग—सन्ध्या प्राणायाम और उसमें आई हुई क्रियाओंकी अपूर्व व्याख्या ।-) उर्दू ।)

सत्य उपदेश माला—श्रीस्वामी जी के शान्तिदायक उपदेशोंका संग्रह जिनमें भक्तियोग, कर्मयोग, ज्ञानयोग और राजयोग की व्याख्या कर मुक्तिके साधन वर्णन किये गये हैं १) उर्दू ।॥)

आर्य्य सामाजिक धर्म—आर्य्यसमाजके दस नियमों की व्याख्या ॥)

दयानन्द वचनामृत—ऋषिके ग्रन्थोंसे भिन्न २ विषयों पर उनके अनेक वचन ॥=)

इनके अतिरिक्त हर प्रकारकी सामाजिक पुस्तकें मिल सकती हैं।

राजपाल मैनेजर—

आर्य्य पुस्तकालय, लाहौर।

ओंकार उपासना ।
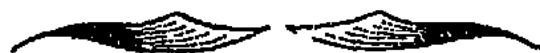
मनुष्य स्वभाव ही से किसी न किसीका उपासक है । इसमें उपासना वृत्ति नैसर्गिक है कृत्रिम नहीं, विद्वानों ने जंगली जातियों में भी उनके बुद्धि विकाश के अनुसार उपासना वृत्ति का अस्तित्त्व देखा है । इतिहास के मन्दिर में प्रविष्ट होकर किसी जाति के यदि पुरातन से पुरातन वर्षपत्र को निकाला जाय, तो उसमें ऐसा एक भी दिन न मिलेगा, जबकि वह उपासना शून्य थी । ऐसा प्रतीत होता है कि मनुष्य मण्डल को मृत्यु लोक में अवतार धारण करते समय ही उपासना वृत्ति के तार में परो दिया गया है, कि कहीं यह अमर लोक से विमुख न हो जाय, और इसका **अनन्त के साथ सम्बन्ध बना रहे** । सूर्य्यदेव जिस प्रकार अपने से बिछडे हुए ग्रहों को अपने आकर्षण द्वारा अपनी ओर आकृष्ट कर रहे हैं, इसी प्रकार परमात्मदेव अपनी अपार दया से परम पद से पतित मायाभिमुख प्राणी को अपनी ओर खींचते हैं, और यह आकर्षण परम सुख की प्राप्ति की आकांक्षा के रूप में सब मनुष्यों में प्रत्यक्ष है । तीन गुणों से

मिश्रित सृष्टि में, धूप छाया की भान्ति परिवर्त्तनशील जगत् में परम सुख की प्राप्ति मानना "मृगतृष्णा" है। क्योंकि दृश्य पदार्थ देश और काल से घिरे हुए हैं, इसलिए अल्प हैं परम नहीं। जो वस्तु अल्प है उससे परम सुख की प्राप्ति कैसे हो सकती है? परम सुख की प्राप्ति और परमानन्द की उपलब्धि तो देश काल से ऊपर परम प्रभु परमात्मदेव ही के लाभ से हो सकती है अन्यथा नहीं। इस समझ को सन्त लोग आत्मिक विवेक कहते हैं। आत्मिक विवेकयुक्त विवेकी भक्त जन परम सुख की प्राप्ति के लिए परमात्मदेव का जो ध्यान, आराधन और चिन्तन करते हैं, वही परम पाविनी उपासना है॥

गुरु भक्ति।

आदि काल ही से सन्त लोग यह कहते आए हैं, कि आत्मिक लोक की यात्रा में सफलता विना गुरुमुख हुए, और विना गुरु सेवन किए नहीं उपलब्ध होती। और जब तक गुरु देव अपने द्वार के दीन भक्त पर दया न करें, उसको मार्ग पर न चलायें, और यात्रा में आने वाले विघ्न बाधाओं से न बचाएं, तब तक आत्मिक कल्याण की आशा दुराशा है। इसी लिए इस मार्ग के जिज्ञासु यात्री और प्रेमी सब से पूर्व गुरुदेव की गवेषणा करते हैं। दूर दूर देशों में, पर्वतों पर, नदी नालों के किनारे, और गिरि गुफाओं में गुरुदर्शन के अभिलाष के लिए घूमते फिरते हैं, पर किसी भाग्य वाले हीको कदाचित् कहीं आत्मनिष्ठ महात्माओंका मिलाप होता है, नहींतो बहुतेरे बेचारे भोले भाले भक्त व्यर्थ ही भटकते रहते हैं, अथवा ढोंग वा दम्भमें फंस

कर तन धन पूजकर निराश रह जाते हैं। सच है कि इस प्रलोभन पूर्ण पृथ्वी पर पर्य्यटन करने वाले प्राणियोंमें "आश्चर्योऽस्य वक्ता" इस परमात्मदेवका बखान करने वाला अनुभवी पुरुष आश्चर्य्य (दुर्लभ) है। मानुषी देह धारी गुरुका मिलाप दुर्लभ मान कर कोई मनुष्य अपने कल्याणसे वञ्चित न रह जाय, इसलिए परम सन्त योगिराज श्रीपतञ्जलि ईश्वर भक्तिसे समाधि सिद्धि बताते हुए उपदेश करते हैं:—सः पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्' परमात्मदेव कालके घेरेसे ऊपर होनेसे ब्रह्मा मनु आदि पूर्वज महात्माओंके भी गुरु हैं। इसका तात्पर्य यही है, कि परम पदका प्रेमी, परमात्मदेव हीको परम गुरु माने, आराधना कालमें उसीकी दया और सहायताकी याचना किया करे॥

न जाने किस समय गुरु सहायताकी आवश्यकता आपडे, इसलिए अभ्यासमें गुरुकी समीपता बड़ी आवश्यक होती है, सो सर्वव्यापक तथा पूर्ण स्वरूपसे भक्त हृदयमें विराजमान भगवान्से अधिक अन्य कौन समीप होगा? अतएव जगद्गुरु जगदीश्वर अधिकतम पास होनेसे गुरुभावनाके सर्वोत्तम पात्र हैं, वेदमार्ग में तो भक्तवत्सल भगवान माता पिता बन्धु और सखा आदि सम्बन्धोंसे सम्बोधन किए गए है। भक्तको यह धारणा करनी चाहिए, कि परम पुरुष परम गुरु परमात्मदेव मेरे पास हैं। अपने परम प्रेमके तारसे मुझे अपनी ओर आकृष्ट कर रहा है, वह मेरे पास है, मेरी सहायतामें तत्पर है। उस दयालुदेवकी दयासे मेरे मार्गके सकल विघ्न दूर और चूर हो रहे हैं॥

भक्ति धर्म्ममें गुरु चिन्तन, गुरु आराधन, और गुरुध्यानादि

बताया जाता है । यहां तक गुरु प्रेमकी प्रथा इस पथमें है, कि गुरु हींको सर्वस्व जान कर भक्त लोग गुरुकी उपस्थितिमें उसका और अनुपस्थितिमें उसकी आकृतिका ध्यान करने लग जाते हैं । योगके सम्पूर्ण रहस्योंके ज्ञाता भक्ति धर्मके मर्मज्ञ महामुनि पतञ्जलि को यह बात सर्वथा ज्ञात थी, कि जो गुरुदेव उन्होंने बताया है वह आकार रहित अकाय है, वह अनन्त है, सर्वत्र परिपूर्ण है, पांचों ज्ञानेन्द्रियां मन समेत अपनी सारी दौड़ लगाकर भी उस तक नहीं पहुंच सकती। तब उस गुरुदेवका आवाहन करने उसका प्रेम अपनेमें सम्पादन करने, और उस भगवान्को अपना भक्ति भाजन बनानेका कौन साधन है ? इसका समाधान योगिराज पतञ्जलिने बताया है, कि "तस्य वाचकः प्रणवः" उस गुरुदेवको मन मन्दिरमें आवाहन करनेके लिए उसका वाचक (प्रकट कर्त्ता अथवा नाम) ओम् है । सनातन भक्ति धर्ममें अपने गुरुमें परम प्रेम और परा भक्ति उत्पन्न करनेके लिए ओम् परम और चरम साधन है । इसी ओम् नामसे असंख्य भक्त जन सफल मनोरथ और सिद्ध काम हो गए। इस समय भी सैकडों सन्त जन इसी नाममें धुन लगा निमग्न रहते हैं । इस नामका जितना अधिक प्रभाव है, इससे जितनी शीघ्र सिद्धि और समाधि होती है, उसका अंश भी अन्य साधनोंमें मिलना दुर्लभ है ॥

ओम् का महत्त्व ।

ओम् परमात्मा का सर्वोत्तम नाम है । इस में ईश्वर के सम्पूर्ण स्वरूप का वर्णन है । इसमें ईश्वर के सब गुण आजाते हैं । ऐसा पूर्ण ऐसा उत्तम ईश्वर सम्बन्धी दूसरा नाम नहीं

मिलता। ओम् कहते समय किसी भी अन्य विशेषण की आवश्यकता नहीं पड़ती। सब भाषाओं के, ओम् से भिन्न ईश्वर सम्बन्धी नामों के साथ विशेषण लगाये विना परमात्मा के सम्पूर्ण स्वरूप का बोध नहीं होता।

ऐश्वर्य्यवान् होने से परमात्मा का नाम **ईश्वर** है। परन्तु इस नाम से ईश्वर की सर्वज्ञता सर्वशक्तिमत्ता और पूर्णानन्दता सिद्ध नहीं होती। यह नाम राजों महाराजों के लिए भी साहित्य में उपयुक्त हुआ है। **परमात्मा** कहने से सब से बड़ा आत्मा इसी अर्थ का बोध होता है, न कि सर्वज्ञान, सर्वशक्ति, आदि गुणों का। **सर्वज्ञ** कहने से ईश्वर सर्वज्ञानी है; **सर्वशक्तिमान्** कहने से ईश्वर सर्वशक्तियुक्त है, इन्हीं गुणों का बोध होता है, शेष गुणों का नहीं। जिस प्रकार पण्डित लोग ईश्वर अथवा परमात्मा आदि शब्दों के साथ अनन्त ज्ञान, जीवन शक्ति और आनन्द आदि विशेषण लगाते हैं, इसी प्रकार मौलवी और पादरी लोग भी खुदा, अल्लाह और गाड आदि ईश्वर नामोंके साथ अनेक विशेषण लगा कर ही अपने भावको प्रकाशित करते हैं। जैसे परमेश्वर, खुदा अथवा गाड सर्वशक्तिमान्, अविनाशी, सर्वज्ञ सर्वव्यापक और परमानन्द है, यह कहा जाता है, वैसे ओम् के साथ सर्व शक्तिमान् आदि विशेषण जोड़ कर ओम्का वर्णन करना अनावश्यक है। ओम् कहना ही भक्तके लिए पर्य्याप्त है; क्योंकि बीजमें पेड़की भांति सब विशेषण इसीमें समाये हुए हैं।

ओ३म् में सर्वशक्तिमत्ता।

'अ' 'उ' और 'म्' इन तीन अक्षरोंसे ओम् शब्दकी सिद्धि

होती हैं 'अ' स्वर है। वैय्याकरण, "स्वयं राजते इति स्वरः" जो स्वयं प्रकाशित हो, जिसको दूसरेकी सहायता की अपेक्षा न हो, उसे स्वर कहते हैं,। कोई भी स्वरहीन व्यंजन बोला नहीं जाता; कोई भी शब्द अथवा वाक्य केवल व्यंजनोंसे बन नहीं सकता, एवं कोई भी सत्ता जिसका आश्रय 'अ' (ईश्वर) न हो, हो नहीं सकती, और कोई भी रचना अथवा कार्य्य प्रकट नहीं हो सकता, जब तक कि उसके होनेमें 'अ' (ईश्वर) की प्रेरणा 'अ' (ईश्वर) की विद्यमानता न हो। अक्षर मालामें व्यंजन तुच्छ शक्ति युक्त हैं; वे अपने आपको भी प्रकट नहीं कर सकते। परन्तु स्वर सर्वशक्तिमान् हैं। जहां स्वर किसी अन्यकी सहायताके विना स्वयं प्रकट होता है, वहां सारेके सारे व्यंजनोंके प्रकट होनेका मूल कारण भी है। यही दशा पदार्थ माला और कार्य्यमालाकी है। 'अ' से भिन्न सर्व पदार्थ और कार्य्य व्यंजन अक्षरोंकी तरह हैं। इन सबका जीवन और प्रकाशक 'अ' (ईश्वर) सर्वशक्तिमान् है। उसे किसी अन्य पदार्थकी सहायताकी अपेक्षा नहीं। वह स्वयं प्रकाशित है, और व्यंजनोंमें स्वरकी भांति वस्तुमात्रमें ओत प्रोत होकर उसे जीवनसत्ता और प्रकाश देरहा है। वह सबका अन्तरात्मा है। यदि यह मूल सत्ता न हो तो अन्य सर्व सत्ताओं का अभाव हो जाय। "तमेव भान्तमनुभाति सर्वम्" उसीके प्रकाशित होनेसे अन्य सब पदार्थ प्रकाश पाते हैं।

"सर्वशक्तिमान्" का अर्थ।

'सर्वशक्तिमान्, शब्दका यह अर्थ करना कि ईश्वर जो चाहे सो कर सकता है, अथवा सब कुछ कर सकता है, जहां भक्ति-

भावकी त्रुटिका बोधक है, वहां यह अर्थ अनेक दोषोंसे भी पूर्ण है। प्रेमसे पूर्ण परम पवित्र पिता कभी अपने प्यारे परम भक्त पुत्रको नरक भेज सकता है? कभी कोई भक्त विचार सकता है, कि ईश्वर परमात्मा भी पापाचरण करता है। भगवद्भक्तोंके हृदयमें तो परमात्मदेव दया, प्रेम, पवित्रता और न्यायादि गुणयुक्त ही विराजते हैं, जब कोई भी ईश्वरवादी बुद्धिमान् यह नहीं मानता कि परमात्मा अन्याय कर सकता है, पाप कर सकता है, अपने सारे ज्ञानको भुला सकता है, अपने जैसा ईश्वर उत्पन्न कर सकता है, अथवा अपनी प्रजाको अपने राज्यसे बाहर निकाल सकता है, तो 'सर्वशक्तिमान्‌का अर्थ—जो चाहे सो करता है, अथवा कर सकता है, कितना भक्तिशून्य युक्तिरहित और भूलसे भरा हुआ है, यह जानना बहुत ही सुगम है।

भक्ति धर्म्म में, ईश्वर पवित्र है, प्रेम है, दया है, अतुल है और सर्व दोष रहित है, इसीलिये 'सर्वशक्तिमान्' का अर्थ, सर्व शक्तियां परमात्मदेव में हैं, किया जाता है। सारी शक्तियां स्वरूप में पवित्र हैं। वस्तु देखने की एक शक्ति है, परन्तु किसी मनुष्य को शत्रु समझना, किसी वस्तु को चुराने के लिए अथवा अनुचित लोभ से देखना, यह दोष जानने और देखने की शक्ति का नहीं, किन्तु बुरी भावना का दोष है। इसी प्रकार सुनने करने और विचारने आदि की शक्तियोंमें दोष नहीं है, इनमें दोष राग और द्वेष से होते हैं। राग और द्वेष से प्रेरित होकर जो शक्तियों का उलटा अनुचित अशुद्ध और अनीति युक्त व्यापार है, वही बुरी भावना जन्य दोष है। बुरी

भावना और राग द्वेष अज्ञान से होते हैं। परमात्मदेव पूर्ण ज्ञानी हैं, अतएव बुरे भावों से राहित हैं। राग द्वेष से विमुक्त हैं। इस लिए उसकी शक्तियोंमें दोषों की सम्भावना भी नहीं है।

सत्य को असत्य करना, असत्य को सत्य करना, और अस्ति को नास्ति बनाना, नास्ति को अस्ति बनाना भी 'सर्व शक्तिमान्, का अर्थ नहीं है। क्योंकि उसका ज्ञान एक रस है। देशकाल से ऊपर है। सत्य और यथार्थ है, इसलिए ईश्वर, जो वस्तु है उसका होना, जो नहीं है, उसकी नास्ति को एक रस जानता है। उसका ज्ञान काल में नहीं घिरता। भूत भविष्यत् और वर्त्तमान के भेद एकदेशी पदार्थों के लिए है, अनन्त के लिए नहीं। अतः परमात्मा के ज्ञान में जो अभाव है, शून्य है, नास्ति है, यदि वह भाव और अस्ति होजाय, तो उसका ज्ञान ही मिथ्या ज्ञान होजाय। जैसे गणित शास्त्र में एक और एक मिलके दो बनते हैं, यह जानते हुए भी किसी क्षण कोई यह समझने लगजाय, कि एक और एक मिलके तीन अथवा चार बनते हैं, तो उसका सारा का सारा गणित ज्ञान मिथ्या होजायगा। ऐसे ही परमात्मा का नास्ति ज्ञान अस्ति होजाय, अभाव ज्ञान भाव होजाय, तो जहां किसी भी वस्तु की सत्यता न रहेगी, वहां परमात्मा का ज्ञान भी सिद्ध न होसकेगा।

तात्पर्य यह है कि 'सर्वशक्तिमान्' का अर्थ जो लोग यह करते हैं, कि परमात्मा जो चाहे करता है, अथवा कर सकता है, और अभाव का भाव में, और भावको अभाव में लाता है, यह

भ्रममूलक विचार है। भक्तों के भगवान् में सब शक्तियां हैं, पर शुद्ध हैं, दोष रहित हैं, और एक रस हैं।

ओम् सर्वज्ञ है॥

मनुष्य का सारा ज्ञान, सारे विचार शब्दों में पिरोए हुए हैं। हम किसी भी वस्तु का ध्यान करें, किसी भी वस्तु को सोचें, हमारा ध्यान और सोचना शब्दों ही में होगा, यह सत्य है, कि हमारा मन, हमारी बुद्धि शब्द क्षेत्र मे बाहर कभी नहीं चले, और न ही चलना जानते हैं। जो शब्द मानुषी ज्ञान का आधार है उनकी रचना अक्षरों के संयोग से होती है। जो अक्षर मिलकर ज्ञान के आधार शब्दों को जन्म देते हैं उन सब में आदिम अक्षर और अपने से भिन्न सब अक्षरों का प्रकाशक अक्षर 'अ' है। दूसरे शब्दों में कहा जाय तो 'अ' आदिम अक्षर है। अन्य सब अक्षरों में 'अ' है। अक्षरों में शब्द हैं, और शब्दों में ज्ञान है। यदि 'अ' न हो तो अन्य कोई भी अक्षर न हो। कोई भी अक्षर न हो, तो शब्द मात्र का अभाव होजाय। शब्दों के अभाव से ज्ञान का अभाव सहज सिद्ध है। इसलिए सारे अक्षरों व शब्दों के प्रकाशक 'अ' ही में सर्वज्ञान है। 'अ' जहां वर्ण माला में वर्ण है वहां 'ओम्' का भी भाग है। इससे महात्मा लोग सिद्ध करते हैं, कि जैसे 'अ' वर्ण में अन्य सब वर्ण और शब्दजन्य सारा ज्ञान है, इसी प्रकार 'अ' (ईश्वर) में सम्पूर्ण ज्ञान है। 'अ' (परमात्मा) सर्वज्ञ सर्वदर्शी है॥

'अ' अक्षरों में आदि अक्षर है। इसी से वर्णों, शब्दों और शब्दजन्य ज्ञानों की उत्पत्ति है। अध्यात्मवाद में 'अ' परमात्मा

का नाम है, और यह सूचित करता है कि परमेश्वर ही से ज्ञान की उत्पत्ति हुई है । और वही ज्ञान का आदि स्रोत है ॥

'अ' की ध्वनि कण्ठ से निकलती है । अन्य सब वर्णों की ध्वनि कण्ठ के ऊपरसे निकलती है । हां 'क' और 'ह' की ध्वनि का स्थान भी कण्ठ है, परन्तु जब तक इनके साथ स्वर न हो तो वर्ण बोले नहीं जा सकते । इन सब से सन्त लोग यही सिद्ध करते हैं, कि सब ज्ञानों, सब ध्वनियों, और सब स्वरों का आदिम 'अ' (परमात्मा) है ॥

जगत् का आदि मध्य और अन्त ओम् है ॥

ध्वनि का आदि कण्ठ 'अ' से है, और मध्य होठों में एवं अन्त नाक में है, अर्थात् सानुनासिक अक्षरों में हैं । आदि का प्रतिनिधि 'अ' है, सर्वथा होठों में बोला जाने वाला मध्य का प्रतिनिधि 'उ' है । पांच वर्गों में पवर्ग अन्तिम वर्ग है । पांचों वर्गों के वर्णों में अन्त का वर्ण 'म्' है । पांच वर्गों के ङ्, ञ ण्, न्, और म् ये पांच सानुनासिक वर्ण हैं । पांचों सानुनासिकों में अन्तिम सानुनासिक 'म्' है । होठों को बन्द करके नाक में ध्वनि गुंजाई जाय तो वह पूर्णतया नाककी ध्वनि होगी । और वह ध्वनि अंतिम होगी । उससे आगे कोई भी ध्वनि गुंजाई नहीं जा सकती । ठीक ऐसी ध्वनि 'म्' की है । इसलिए पूर्णता से अन्तका प्रतिनिधि 'म्' है । 'अ' 'उ' और 'म्' से ओम्का प्रकाश होता है । मुनि लोग इस नाम रचनासे यह सिद्ध करते हैं, कि जैसे ध्वनिकी उत्पत्ति तथा आदि 'अ' वर्णसे है, ऐसे ही सृष्टिकी उत्पत्ति तथा आदि 'अ' परमात्मा से है । यथा ध्वनिके

मध्यका पूर्ण प्रतिनिधि 'उ' वर्ण है, तथा सृष्टिके मध्यमें भी इसका आधार और पालन पोषण कर्त्ता 'उ' (परमात्मा) है। जैसे ध्वनिकी पूर्णतासे समाप्ति 'म्' वर्णमें है, एवमेव सृष्टिका अन्त सृष्टिका लय 'म्' (परमात्मा) हीमें है। सारांश आदिमें ओम् है, मध्यमें ओम् है, और अन्तमें भी ओम् ही है। ओम्से रचना ओम्से पलना, और ओम् हीसे लय है॥

'अ' ध्वनि मुखके भीतर और सूक्ष्म है। 'उ' की ध्वनि मुखसे बाहर और स्थूल है। और 'म्' की ध्वनि समाप्ति सूचक और स्थूल सूक्ष्मता मिश्रित है। सृष्टिकी सूक्ष्म दशामें ओम् है, स्थूल अवस्थामें ओम् है, और समाप्ति पर स्थूल सूक्ष्मता दशामें भी ओम् ही है।

ओम् सर्वान्तर्यामी, सबका आधार आश्रय और जीवन है॥

'अ' की ध्वनि कण्ठसे निकलती है। इसके निकलनेमें जीभ, तालु, होठों और नाकमें गति उत्पन्न करनी नहीं पड़ती। 'अ' की ध्वनि किसीकी अपेक्षा रहित स्वतन्त्र ध्वनि है। 'अ' का संकेत भी 'ा' इस प्रकारका स्वतन्त्र संकेत है। विस्तृत कण्ठसे जीभ आदि हिलाए विना जो आकृति बनती है, पंडितोंके मतमें वही यह 'ा' आकृति अथवा सङ्केत है। अन्य सब स्वरोंमें 'अ' की ध्वनि मिली हुई है। कण्ठके बिना केवल जीभ, केवल तालु केवल होठों, और केवल नासिकासे कोई भी वर्ण उच्चारण नहीं किया जा सकता। जो भी स्वर निकालो अथवा अलापो उसमें

कण्ठका स्वर अवश्य होगा । जो भी वर्ण उच्चारण करो उसमें 'अ' की ध्वनि अवश्यमेव होगी । जैसे कण्ठकी ध्वनि जीभकी ध्वनिमें रमी हुई है, और सब ध्वनियोंका आधार आश्रय और जीवन है, इसके विना कोई भी ध्वनि नहीं निकाली जा सकती, ऐसे ही 'अ' सब वर्णोंमें रमा हुआ है । सबका आधार आश्रय और जीवन है ॥

'अ' का उच्चारण विना मिलाये अन्य किसी भी वर्णका उच्चारण नहीं हो सकता । 'अ' ही के आधीन सब वर्णोंकी सत्ता है ।

यथा 'अ' सब वर्णोंमें रमा हुआ है, अन्य वर्णोंके उच्चारण का आधार आश्रय और जीवन 'अ' है । वह स्वयं स्वतंत्र है । अन्य सब वर्ण परतंत्र हैं, 'अ' के अधीन हैं । ऐसे ही 'अ' (ओम्) सर्वान्तर्यामी है, सबमें रमा हुआ है, और स्वतंत्र है । अन्य सारे पदार्थ इसके समीप ऐसे ही हैं, जैसे अवर्णके समीप शेष सम्पूर्ण वर्ण । अत एव 'ओम्' सब पदार्थोंका आधार आश्रय और जीवन है । सब सत्ताएं परतंत्र हैं, और 'ओम्' के अधीन हैं । सबका अन्तरात्मा 'ओम्' है ।

अवर्णकी '।' ऐसी आकृति सब वर्णोंमें ज्ञानियोंने सिद्ध की है । इसका भी आत्मवादमें यही तात्पर्य है, कि ओम् प्रत्येक वस्तुमें व्यापक और विद्यमान है ।

ओम् आनन्दमय और प्रेम स्वरूप है ।

'अ' का उच्चारण अपने स्वरूपमें पूर्ण है । इसको किसी दूसरे वर्णकी सहायताकी अपेक्षा नहीं, अन्य सारे वर्ण 'अ' के

विना बोले नहीं जाते, अतएव वे अपूर्ण और अधूरे हैं। अवर्ण का उच्चारण सब वर्णोंके उच्चारणमें रमा हुआ है, यहां तक कि शब्दमात्रमें अवर्णकी विद्यमानता है, इसलिए अवर्ण सब वर्णों और सब शब्दोंमें व्यापक है। व्यापक वस्तु ही महान होती है। अतएव अवर्ण पूर्ण व्यापक, और महान है। अध्यात्म वादमें 'अ' से ओम् बनता है। जैसे वर्णमालामें अवर्ण पूर्ण वर्ण है, अन्य सारे वर्णोंमें व्यापक हैं, और अन्य सब वर्णोंसे महान है, ऐसे ही ओम् स्वरूपमें पूर्ण है। किसी भी पदार्थकी अपेक्षा नहीं रखता। अन्य सारे पदार्थ ओम्के आश्रित हैं। वर्णोंमें अवर्णवत् ओम् सब पदार्थोंमें व्यापक है। सबसे महान है। जो वस्तु पूर्ण और महान हो, वही आनन्दमय हो सकती है, अत एव ओम् आनन्द स्वरूप है। पूर्णानन्दमय ही परम प्रिय स्वरूप हो सकता है, इस लिये भक्त लोग भगवान्को परम प्रिय स्वरूप भी कहते हैं।

ऊपर कहे 'ओम्' के सारे व्याख्यानका सारांश स्वल्प और शास्त्रीय शब्दोंमें कहा जाय तो ओम्का अर्थ, सच्चिदानन्द, अथवा अस्ति, भाति, प्रिय स्वरूप परमेश्वर है। ओम् भगवान् अनन्त जीवन, अनन्त ज्ञान, और परम प्रेम स्वरूप है।

'ओम्' निराकार है।

ओम् अक्षरकी आकृति कल्पित है। वह परिवर्तित हो सकती है, और होती आई है। इस समय भी ओम् अनेक आकृतियोंमें लिखा जाता है। भिन्न २ भाषाओंमें भी उसके भिन्न २ आकार हैं। परन्तु 'ओम्' का उच्चारण 'ओम्' की ध्वनि

सब समयोंमें एक रही है, उसमें परिवर्तन हुआ भी नहीं, और हो भी नहीं सकता । सब भाषाओंमें वह एकसी है । इसलिए ध्वनिका उच्चारण ही 'ओम्' है, आकृति नहीं, आकृति केवल संकेत मात्र है ।

बालक को 'ओम्' का उच्चारण बताये विना आकृति मात्र से 'ओम्' का ज्ञान कदापि नहीं होसकता । परन्तु आकृति के ज्ञान से सर्वथा शून्य जन्मान्ध को ओम् का उच्चारण सुनकर 'ओम्' की ध्वनि का पूर्ण और शुद्ध ज्ञान होजाता है । वास्तव में शब्द का प्रकाश उच्चारण में होता है, और उच्चारण अर्थात् ध्वनि निराकार है, अक्षर और शब्द दोनों हैं । इसलिए सभी दार्शनिक पंडित शब्दको निराकार मानते चलेआये हैं ॥

'ओम् नित्य है ॥

आकृति का ज्ञान आंखों से और शब्द का श्रोत्र से होता है, आंखों से नहीं । आकृतियों में परिवर्त्तन होता रहता है, वे बनती भी हैं और बिगड़ती भी । यदि शब्द भी आकारवान् होता तो बनता बिगड़ता रहता, और अनित्य होता । कुशाग्रबुद्धि आर्य्य दार्शनिक शब्दको निराकार और नित्य मानते हैं । 'ओम' शब्द है, इसीलिए निराकार नित्य और सनातन है । इसका वाच्य भी निराकार, नित्य और सनातन है ॥

'ओम्' अजन्मा है ॥

वैयाकरणों के मत में "ओमिति अव्ययम्" ओम् अव्यय हैं । वे अव्यय उस शब्द को कहते हैं जो विभक्ति, लिंग, औ

वचनों के परिवर्त्तन में न आवे। स्वरूप न बदले, जैसा है वैस ही बना रहे। ओम् शब्द का वाच्य सच्चिदानन्द स्वरूप परमेश्वर देव भी परिवर्तन में नहीं आता, अव्यय अजन्मा और एक रस है॥

'ओम्' एक है॥

'ओम्' से भिन्न परमात्मदेव के सारे नामों के एक दो और बहुवचन होते हैं, यथा परमात्मा, दो परमात्मा, और बहुत परमात्मा, इसी प्रकार ईश्वर आदि शब्दों के एक दो और बहु वचन बनते हैं। अन्य भाषाओं में भी ईश्वर सम्बन्धी नामों में ऐसा ही परिवर्तन होता है, परन्तु 'ओम्' अव्यय है, अव्यय एक रहता है, वह परिवर्तनमें नहीं आता, इसलिये सब वैया-करणों के मत में ओम् के दो और बहुवचन नहीं होते, उसका एक ही वचन रहता है, क्योंकि 'ओम्' एक ही है॥

'ओम्' स्वीकार अर्थ में॥

किसी बात के स्वीकार करने के अर्थ में भी 'ओम्' आता है। पुरातनकाल में आर्य्य लोग परमात्मा के परम भक्त थे। प्रत्येक कार्य्य के आरम्भ में 'ओम् तत्सत्' का उच्चारण किया करते थे। वह समझते थे, कि हमारे कार्य्योंमें 'ओम्' ही सहा-यक है। वह कार्य्य वैसा ही होगा, जिसका जैसा होना 'ओम्' के ज्ञानमें है। जैसे कोई भी सेवक, कोई भक्त और कोई भी प्रेमी अपने स्वामी अपने भगवान अपने प्रियतम सखाकी आज्ञा इच्छा और अनुमतिके बिना कार्य्य नहीं करता, और किसी वस्तु को स्वीकार नहीं करता, इसी भावसे प्रभावित भारतके पुरातन

भगवद्भक्त सम्पूर्ण कार्य्योंके आदिमें 'ओम्' तत्सत् और किसीके कथन अथवा पदार्थके स्वीकारमें केवल 'ओम्' कहकर कार्य्यारम्भ और बातका स्वीकार करते हुए, परमेश्वरकी आज्ञा, परमेश्वरकी इच्छा, और परमेश्वरकी अनुमतिकी प्रधानता प्रदर्शित करते थे। वे आर्यसन्तजन अपने प्रत्येक कार्यका ओम्को साक्षी और सहायक समझते हुए अपने कर्मोंमें ही उसका पूजन किया करते। सब कार्योंके आदिमें ओम् नामका मंगल मनाना प्राचीन आर्योंकी परमेश्वर परायणताका एक उज्वल और ज्वलन्त प्रमाण है।

संकेतसे 'ओम्' सर्वत्र पाया जाता है।

सब देशोंमें संकेतकी भाषामें एकता है। सुख दुःखके संकेत, हर्ष शोकके संकेत, प्रायः सर्वत्र एकसे हैं, क्रोध, लोभ, मान, ईर्षा, प्रसन्नता, विषाद, भय, अनुकूलता, प्रतिकूलता, धैर्य, शान्ति और वीरता आदिका प्रकाश हाथ, मुख, आंख और चेहरे आदिकी आकृतिके संकेतसे जब किया जाता है तो प्रायः वे सब जातियों और देशोंमें समान ही होते हैं। मनुष्योंके हृदयगत भावोंमें कोई भेद नहीं है, इसलिए भावोंके प्रकाशक संकेतोंमें भी सर्वत्र स्वभाव सिद्ध समानता है। ऊपर कहा गया है कि पुरातन आर्य्य जन सर्व कार्योंमें ईश्वरका नाम स्मरण किया करते थे, हर्षमें भी ओम् और विषादमें भी ओम् ही का उच्चारण किया करते। जब कभी कोई आश्चर्य-जनक बात स्मरण होजाती, और आश्चर्य घटना घटित होजाती तो ओम् नाम स्मरण किया जाता, मानो वे महाभाग ऐसी सब बातोंमें जगन्नियन्ता ही का नियम काम

करता हुआ जानते थे । उपरोक्त भावोंके प्रकाश कालमें ओम्‌का जो तुरन्त उच्चारण होता था, वही भाव प्रकाशक संकेत आज आहा ! अहहः ! ! ओहो ! ! ! आदि रूपोंमें बदल गया है । और आर्य्यजातिकी अन्य अनेक धार्मिक सामाजिक रीतियों नीतियोंकी भांति हर्ष विषादादिके समय ओम्‌का संकेत भी अपभ्रंश रूपमें सब देशोंमें एकसा पाया जाता है । आज भी भक्त और प्रेमी लोग हर्ष विषाद और आश्चर्य आदिके समय परमेश्वरका नाम लेते अवश्य हैं, पर अपने २ सम्प्रदायके अनुसार ।

वेदके आदि और अन्तमें ओम् ।

महामुनि पाणिनिके मतमें 'प्रणवष्टे' ८-२-८९-'यज्ञ कर्मणि टेरोमित्यादेशः स्यात् । अपां रेतांसि जिन्वतोम्'. यज्ञमें वेदमंत्रोंके अन्तकी 'टि' 'स्वर' को ओम् आदेश हो जाय कहा है, यथा 'जिन्वति' के इकारको ओम् बनाकर 'जिन्वतोम्' किया गया है, इससे यह सिद्ध हुआ कि वेदके जितने मंत्र हैं उतनी संख्यासे ही उनमें ओम् हैं । 'ओम् अभ्यादाने' ८-२-८७ इस सूत्रसे पाणिनि मंत्रके आदिमें लुप्त ओ३म् बताते हैं । इस प्रकार वेद मंत्रोंकी संख्यासे ओम् संख्या दुगणी हो जाती है ॥

'ब्रह्मणः प्रणवं कुर्यादादावन्ते च सर्वदा' मनु० २-७४ वेदके मंत्रके पाठके आदि अन्त, दोनोंमें ओम्‌का उच्चारण करे । आर्यवर महर्षिगण वेद मंत्रोंके पाठ समय आदि अन्तमें ओम् नामका उच्चारण करके अपने जीवनसे, अपनी क्रियासे, और भावोंसे इस बातका सजीव उदाहरण उपस्थित करते थे कि वे

वेदका आदिसे अन्त तक, ब्रह्मप्रतिपादन ही मुख्य तात्पर्य मानते हैं। दो वर्तनोंमें जो वस्तु घिर जाय वैद्य उसे 'सम्पुट' कहते हैं मन्त्रके आदि अन्तमें 'ओम्' आजानेसे मन्त्र सम्पुट हो जाता है। ऐसे सब मंत्रोंका ओम्से सम्पुट है। यद्यपि वेदोंमें प्राकृत विद्याओंका वर्णन है, पर वे विद्यायें ब्रह्म वर्णनमें सम्पुट हो रही हैं। वेदका मुख्य वर्णन ईश्वर है। मुख्य तात्पर्य मनुष्योंको भक्त बनाकर भगवान् तक पहुंचाना है॥

ब्रह्मसूत्रोंके निर्माता ब्रह्मनिष्ठ व्यासदेव 'तत्तु समन्वयात्' सूत्र ३–अ० १ पा०१–इस सूत्रसे बताते हैं कि यह ब्रह्म ही वेदका विषय है, ब्रह्म हीका वेद प्रतिपादन करते हैं। 'समन्वयात्' जैसा परब्रह्मका सम्बन्ध विश्वसे है वैसा ही साक्षात् अथवा परम्परासे सकल वेदमंत्रसे भी। कलिकालमें वेदोंके सर्वोपरि ज्ञाता परम वेद भक्त, परम कारुणिक, प्रभु दयानन्दभी ऋग्वेदादि भाष्य भूमिकामें वेदका प्रतिपाद्य बताते हुए लिखते हैं कि 'परमेश्वर ही वेदोंका मुख्य अर्थ है। और उससे पृथक् जो यह जगत है सो वेदोंका गौण अर्थ है। इन दोनोंमेंसे प्रधानका ही ग्रहण होता है। इससे क्या आया कि वेदोंका मुख्य तात्पर्य परमेश्वर हीके प्राप्त कराने और प्रतिपादन करनेमें है"॥

ओम् और आमीन।

यह लिखा जा चुका है कि पूर्वकालके आर्य्य लोग प्रत्येक कार्य, हर्ष, विषाद और आश्चर्य आदिमें, यज्ञके आदि अन्तमें ओम्का उच्चारण किया करते थे। अपने यज्ञों, मंत्र पाठों, और

कार्योंके आदि अन्तमें ओम्का उच्चारण करना उनको ओ३म्में सम्पुट करना है । दूसरे शब्दोंमें अपने यावत् कर्मोंको ब्रह्मार्पण करना है । आर्योंके इस ब्रह्मार्पणके समान दूसरा दृष्टान्त जगत्में नहीं है । यह समर्पण आर्योंकी निष्कामता, और ईश्वर परायणता का प्रबल प्रमाण है । स्वर्गवासी स्वामी रामतीर्थजीकी अनुमति है, कि ईसाई आदि धर्मों में प्रार्थना के अन्त में जो आमीन अथवा एमन पढ़ा जाता है, वह ओम् ही का रूपान्तर है; क्योंकि आर्य लोग प्रार्थना आदिके अन्तमें ओम्का पाठ करते थे, और वही पाठ अन्य शब्दों की भांति एमन, आमीन में बदल गया है ॥

धर्म्मों में ओम् की विद्यमानता ॥

स्वामी राम के कथनानुसार ईसाई धर्म और इसलाम में 'ओम' आमीन के रूप में विद्यमान है । कोई २ तो यह भी अनुमान करते हैं कि बाईबल में जो खुदा कहता है कि मेरा नाम 'I am' है यह ओम ही की ओर संकेत है । तिब्बत तथा अन्य देशों के बौद्ध लोग 'ओम् मणिपद्मे ओम्' इस मंत्र का जप करते है । जैन मत में भी ओम् का आदर है । वे लोग इसे बीज अक्षर मानते है । कबीर साहिब, चरणादास जी आदि सारे सन्त इसको गाते रहे हैं । खालसापंथकी ग्रंथ वाणीमें भी 'ओंकार सत्तनाम' 'ओंकार वेदनिर्मय' इत्यादि अनेक स्थलोंमें 'ओम्' का वर्णन है । पुराणों और तन्त्र ग्रन्थोंमें तो 'ओम्' का सहस्रों बार वर्णन आया है ।

ऊपरके वर्णनसे यह भी सिद्ध होता है कि धार्मिक संसारमें

सबसे अधिक जन ओम् नाम ही का जाप करते हैं । ईसाइयों और मुसलमानोंको न भी गिनें तो बौद्धोंमें 'ओम् मणिपद्म' होने पर ओम् जपनेवालोंकी संख्या सबसे अधिक ही है।

ओम् स्मर।

जिस वेदसे सारे ज्ञानोंका जन्म हुआ है और जो सारे धर्मोंका आदि स्रोत है, उस वेदमें किसी ईश्वर नामके स्मरणका आदेश है तो वह ओम् ही है। 'ओम् क्रतोस्मर' है। कर्मशील मनुष्य ओम्का स्मरण कर। 'ओम् खं ब्रह्म' यजु० ४०-१७ ओम् अकारवत् निराकार सर्वत्र परिपूर्ण और ब्रह्म है।

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते ॥

(ऋ० मं० १-सू-१६४-मंत्र-३९) जिस ऋग्वेदके सार परम अक्षरमें सारे लोक और इन्द्रियां स्थित हैं, जो उसको नहीं जानता वह ऋग्वेद (के पाठ) से क्या करेगा। (और) जो उस अक्षरको जानते हैं वे ही संसारमें भली भांति रहते हैं । इससे अधिक ओम् नामकी महत्ता, इससे अधिक ओम्का गौरव, और इससे अधिक ओम्का महत्त्वगायन शब्दोंमें और कोई क्या करेगा। वास्तवमें वेद पवित्रने जो पदवी ओम्को दी है वह परम है।

वैदिक ग्रन्थोंमें वार वार ओम्का गायन किया गया है। और जिन महाभाग भक्तोंको उपनिषद रूपी ब्रह्म मन्दिरमें प्रवेश करनेका शुभ अवसर प्राप्त हुआ है, वे मुक्तकण्ठसे कहेंगे कि उपनिषदें ओम् ही का यश गाती हैं, और ओम् अक्षर ही की उपासना

बताती हैं । उपनिषदोंके पाठसे तो प्रतीत होता है कि वह ब्रह्मविद्याकी निर्मल गंगा ऋषियोंके मस्तकरूप शिखरोंसे उतरकर संसारको पावन करती हुई अन्तमें ओम् सागर ही में समा रही है ।

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत् ॥

कठ० २–१५ । आत्मज्ञानी गुरु शिष्यको उपदेश करते हुए कहते हैं कि सारे वेद जिस पदका वर्णन करते हैं, सारे तप जिसको गा रहे हैं, और जिस पद प्राप्ति) की इच्छा करते हुए (तपी अथवा ब्रह्मचारी गण) ब्रह्मचर्य धारण करते हैं, उस पदको संक्षेपसे मैं तुम्हें कहता हूं (वह पद) 'ओम्' यह पद है । 'ओमित्येवं ध्यायथ आत्मानं स्वस्तिवः पाराय तमसः परस्तात्' (माण्डूकोपनिषद्) । महात्मा उपदेश देते हैं, कि हे उपासको ! अन्धकारसे पार होनेके लिए परमात्माको 'ओम्' ऐसा लक्ष्य अथवा ध्येय बनाकर चिन्तन करो, तुम्हारा कल्याण हो । सारे माण्डूक्योपनिषद्में ओम् हीका यश गायन किया है । इस उपनिषद्कार महात्माने त्रिलोकीका समावेश ओम्में सिद्ध किया है । "ओमिति ब्रह्म, ओमिदं सर्वम्" तैत्तिरीय उपनिषद्में कहा है, ओम् ब्रह्म है, ओम् ही यह सारा विश्व है । उपनिषदोंके सम्बन्धमें शेष इतना कथन पर्याप्त है कि छान्दोग्य और बृहदारण्यकके उपासना भागोंमें 'ओ३म्' उपासनाका बड़े विस्तारसे वर्णन है । उपनिषदोंमें वर्णन हुए सब सन्तोंकी सम्मतिमें ओम् ही ब्रह्म,

ओम् ही विश्व, ओम ही प्राण आत्मा और ओम् ही परम ध्येय है । इस लोक और परलोकमें सफल बनाने वाला भी ओम् है, और वही परम अवलम्बन, सहारा और भरोसा है ॥

सब सन्तोंमें ओम्की उपासना ।

ब्राह्मण ग्रन्थोंसे आरम्भ करके पुराणों पर्यन्त साहित्यमें जितने महात्माओंका वर्णन आया है, वे सब ओम्के ही उपासक थे । मनु महाराज तो 'ओम्' को तीन वेदोंका सार बताते हैं, और इसको "एकाक्षरं परं ब्रह्म" पर ब्रह्म कहते हैं, इन्हीं महाराजने बताया है कि "जप्येनैव तु संसिद्ध्येत् ब्राह्मणो नात्र संशयः" इसमें कोई संशय नहीं कि ब्राह्मण जप हीसे सिद्ध हो जाता है । ब्रह्मासे जैमिनि पर्यन्त महर्षि मण्डल ओम् हीका उपासक था । रामायणमें वर्णन आता है कि सिद्धाश्रमको जाते हुए गंगा के किनारे प्रातःकाल, परम, कर्मयोगी, मंगल नाम श्रीरामने अपने छोटे भाई लक्ष्मण समेत स्नानादि करके "जेपतुः परमं जपम्" गायत्री सहित 'ओम्' परमको जपा ॥

एक दिन श्री युधिष्ठिर महाराज प्रातःकाल स्नान सन्ध्या आदिसे निवृत्त होकर वस्त्र धारण और परिष्कार आदि करके अखण्ड ब्रह्मचारी शरशय्याशायी श्री भीष्मके दर्शनार्थ जानेकी आकांक्षासे प्रथम भगवान् श्रीकृष्णके पास गए । युधिष्ठिरजीने देखा कि श्री कृष्ण अकम्प और अचल भावसे "ध्यानमेवापद्यत" ध्यानारूढ हैं । उस दिन युधिष्ठिरजी श्रीकृष्ण महाराजको संग लेकर भीष्मजीके पास गए और प्रश्न पूछनेकी आज्ञा लेकर सायं समय हस्तिनापुर लौट आए । श्री कृष्ण, राजा युधिष्ठिरसे पृथक्

होकर अपने शयनागारमें प्रविष्ट हुए। निर्दोष नीन्द लेते हुए जब चार घड़ी रात्रि शेष रही महाराज उठकर बैठ गए, और अपनी सारी इन्द्रियों और चित्तवृत्तियोंको एकाग्र करके श्रीकृष्ण देवने उस समय 'दध्यौ ब्रह्म सनातनम्' सनातन ब्रह्म 'ओम्' का चिर तक ध्यान किया।

श्री कृष्णजीने ओम्को "एकाक्षरं परं ब्रह्म" एकाक्षर ब्रह्म कहा है, और गीतामें यह भी बताया है कि "वेद्यं पवित्रमोंकार:" पवित्र ओंकार जानने योग्य है। गीताके पाठसे यह बात निश्चित प्रतीत होती है कि श्रीकृष्ण महाराजके समय ब्रह्मज्ञानी और सारे वैदिक धर्मी लोग प्रत्येक शुभ कर्मके प्रारम्भमें 'ओम् तत्सत्का पाठ पढा करते थे, क्योंकि श्रीकृष्ण कहते हैं:—

'ओम् तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः'

गीता १७—२३।

'ओम् तत्सत्' इन तीन पदोंको ब्रह्मनिर्देश कहा गया है "इसलिए ब्रह्मवादियोंके यज्ञदान तप आदि शास्त्रोक्त कर्म सदा, ओम् उच्चारण करके ही किए जाते हैं"। ध्यानमें निपुण बौद्ध भिक्षु भी एक अक्षर ओम् हीमें अपने आपको निर्वाण करते हैं श्री शंकराचार्य्य आदि आचार्य्य इसको प्रतीक मानकर उपासना करना बताते हैं। देशी भाषाओंमें अपने भावोंको प्रकाशित करने वाले भक्ति धर्मके अनुयायी दादु, कबीर, चेतन, चरणदास श्रीनानक जी आदि सन्त जन सीधे अथवा प्रकारान्तरसे ओम् हीके भक्त थे। सन्तराज स्वामी दयानन्द जी नियमसे नित्य बड़ी देर तक ओम्के ध्यानमें लीन हुआ करते थे। महाराजने

सन्यासियोंको ओम्का जप करनेकी प्रबल प्रेरणाकी।

इस समय भी सैकड़ों साधु, सन्यासी, सूफ़ी, फ़कीर, और सज्जन गृहस्थ अपने मनमें ओम् नामकी माला जपते हैं, और परमानन्दकी प्राप्तिका सर्वोत्तम साधन इसी शब्दको समझते हैं॥

ओम् सोहम्।

बहुतसे महात्माजन "ओम् सोहम्" का श्वास प्रश्वासके साथ जप करते हैं। कईयोंको केवल 'सोहम्' का जप करते भी देखा है। गोरक्ष पद्धति, हठयोगप्रदीप, आदि योग ग्रन्थों और चरणदास आदि महात्माओंकी वाणियोंमें 'सोहं' जापका विधान भी किया गया है। इस 'सोहम्' संतजापका अर्थ वह (ब्रह्म) मैं हूं लोग करने लग गए हैं। पर महात्माओंके मतमें इस अर्थ का आदर नहीं है। ध्यान क्रियाके भेदोंको जानने वाले मुनिजन 'सोहम्' को ओम् ही वताते हैं। जैसे व्याकरण शास्त्रमें प्रत्ययोंके विधान करते हुए सुगमतार्थ कई अक्षर जोड़े जाते हैं, ऐसे ही श्वास प्रश्वासके साथ जप करते समय सुगमता हो, यह सोच कर नवीन संतोंने 'ओम्' के साथ 'स' और 'ह' यह दो अक्षर जोड़ दिए हैं। भीतरको सांस खींचें तो 'सो' की लम्बी ध्वनि प्रतीत होगी, और यदि नाकसे धीरे २ बाहर सांस छोड़ते जायं तो 'हम्' की गूंज ज्ञात होगी। इसी क्रमको और स्वाभाविक क्रमको सोच कर सज्जनोंने 'ओम्' में 'स' और 'ह' मिलाए हैं। यदि व्याकरणके व्यर्थ प्रत्यय अक्षरोंकी भांति 'स' 'ह' का लोप कर दिया जाए तो शेष 'ओम्' ही रह जायगा॥

ओम्का उच्चारण सुगम और कोमल है।

सब धर्मोंकी पुस्तकोंमें, सब देशोंकी भाषाओंमें और सब सन्तोंके रसीले संगीतोंमें परमात्माके जितने नाम आए हैं उन सबमें अतीव कोमल, महा मधुर, अतिशय सुगम 'ओम्' नाम है। ग्रामोंके वासी 'श' आदिका ठीक उच्चारण नही कर सकते इसलिए ईश्वर, ईश खुदा पुकारते हैं। *God* तो उनमें कहा ही नहीं जाता, अच्छेसे अच्छा पश्चिमी पण्डित भी एक ही दिनमें परमात्मा नहीं कह सकता, किन्तु परमाटमा ही कहेगा, पर 'ओम्' नाम ऐसा सुगम, ऐसा कोमल है कि किसी देशका वासी वह ग्रामीण हो चाहे नागर, सुबोध हो चाहे सर्वथा अबोध, अपढ हो चाहे पंडित हो, दो चार पल हीमें इसका शुद्ध उच्चा· रण सीख सकता है। यह नाम कठोरता रहित है। सब देशों और मनुष्योंके लिए समान है॥

अनुभूति स्वरूपाचार्य—नामक एक व्याकरणके पण्डित हो गए हैः—

कहते हैं कि एक दिन वे किसी नगरमें धुरन्धर पण्डितोंके साथ शास्त्रार्थ कर रहे थे इनका ऊपरकी दन्तपांक्तिका एक दांत टूटा हुआ था। प्रसंगवश सप्तमी विभक्तिका बहुवचन 'पुंसु' कहने लगे परन्तु टूटे दांतके स्थानमें अकस्मात् फूंक निकल गई और 'पुंसु' के स्थान 'पुंक्षु' अशुद्ध उच्चारण होगया 'पुंक्षु' शब्द सुनते ही प्रतिपक्षियोंने अपनी जयकी घोषणा कर दी। अनुभूति स्वरूपजीने अपने 'पुंक्षु' को शास्त्र सम्मत सिद्ध कर दिखानेके लिए एक दिनका अवकाश मांगा, और वह अवकाश

उन्हें देदिया गया। रात्रि भरमें सारस्वत व्याकरणकी रचनाकी गई, और अगले दिन आकर आचार्य्यजीने अपने निशि निर्मित व्याकरणसे 'पुंक्षु,शब्दकी सिद्धि प्रतिपक्षियोंके सन्मुख उपस्थितकी।

ऊपरकी कथाके कथनका यही प्रयोजन है, कि यदि किसी के मुंहमें दांत न हों तो वह जिन शव्दोंमें दांतोंसे बोले जाने वाले अक्षर आते हैं, उन शब्दोंको नहीं बोल सकता। इसीलिए बच्चों और बूढोंके लिए परमात्मा, खुदा और गाड आदि नामोंका उच्चारण कठिन हो जाता है। किसी मनुष्यकी जीभ कट गई हो तो वह भी तकारादि अक्षरों युक्त शब्दोंको नहीं बोल सकता, तुतले और हकले मनुष्यकी जो दशा बोलते समय होती है, और जो अक्षरोंका सत्यानाश वे करते हैं उसे सब ही जानते हैं, पर गूंगा बेचारा तो सारा बल लगाकर भी कोई भी शब्द नहीं बोल सकता। हां एक अक्षर है जिसे बच्चा बूढा, जीभकटा तुतला, हकला, और गूंगा भी बड़ी सुगमतासे बोल सकता है, और वह अक्षर 'ओम्' है। दांत मुंहमें न हों, जीभ कट गई हो तो तुतले हकले और गूंगेपनमें भी परमात्माकी भक्तिसे कोई वंचित नहीं किया गया। ओम् उच्चारणमें तो दांत और जीभ आदिके हिलनेका काम ही नहीं, गला ठीक होना चाहिए, इसमें केवल कण्ठका काम है। कण्ठको खोलकर लम्बे 'ओ' की ध्वनि गुंजाओ और अन्तमें होठ बन्ध कर दो अथवा 'ओ' ध्वनिको अपने आप शान्त होने दो, सांस समाप्त होनेके समय 'ओ' की ध्वनि, नाकमें धीमी धीमी गूंजने लग जावेगी, उस समय 'ओम्' का उच्चारण पूर्ण हो जावेगा। किसी मनुष्यका

कण्ठ तभी बन्द होता है जब उसके जीवनके पल समाप्त हो जाते हैं। मनुष्यके अन्त काल तक उसका गला बना रहता है, इससे मनुष्य जीवनके अन्तिम श्वास, अन्तिम पल पर्य्यन्त परमात्म देवके पवित्र नामकी डोर पकड़ सकता है, भक्त बन सकता है, और स्वर्गारोहण कर सकता है।

जातकर्म संस्कार और ओम् ॥

आर्य्य लोग संस्कारोंके महत्वको आदिकालसे मानते चले आए हैं, जैसे औषधियोंको बराबर भावना वा पुट देनेसे वे प्रबल हो जाती हैं, धातुओंमें शोधन आदि क्रियाओंसे पुष्टि और प्रबलता आ जाती है वैसे ही संस्कारोंसे मनुष्य जातिकी प्रबलता हो जाती है ॥

संस्कार पद्धतिके अनुसार, जब बालकका जन्म हो तभी उसका पिता सुवर्ण शलाकाको घृत और मधु लगाकर नवजात बालककी जीभ पर बड़े कोमल हाथसे 'ओम्' लिखे और उसे दूजके चांदके दर्शनोंसे प्राप्त हुई प्रसन्नताका प्रकाश "अंगादंगात्सम्भवसि" इत्यादि पाठ पढ करके करें। उसी समय उसके कानमें "वेदोऽसि" तू वेद है, ये शब्द कहें ॥

जन्मसे ही बालककी जीभ पर ओम् लिखकर वैदिक पिता स्वसन्तानको इस भावसे प्रभावित करता है। उस पर यह भाव प्रकाशित करता है, कि मेरे चित्तके चांद तेरी जीभ पर पहिले पहिल विराजने वाला शब्द ओम् है तेरी जीभ पर सदा रहने योग्य कोई नाम है तो यह "ओम्" है ॥

घृत और मधु, यह दोनों पदार्थ रोगोंको दूर करनेवाले हैं,

पुष्टिके देने वाले हैं, इनसे परमेश्वरका नाम ओम् लिखनेका यह तात्पर्य है, कि घृतसे अधिक पुष्टि देने वाला, रोग नाशक, मधु से भी अधिक मधुर और दोष विनाशक ईश्वरका ओम् नाम है। रसनाको ईसका रस सदा लेते रहना चाहिए ॥

यद्यपि हीरा, मोती आदि रत्न बहु मूल्य हैं। उनका बड़ा आदर है। यह भी ठीक है कि कभी २ एक दो तोले भरके हीरेकी बराबरी सेरों सोना नहीं कर सकता, पर आगमें पड़नेसे जहां सारे रत्न कोयला अथवा राख हो जाते हैं वहां आगमें पड़कर सुवर्ण अधिक उज्वल हो जाता है, और अतिशय चमकने लगता है। इसलिए वास्तविक धन सम्पत्ति सोना है, जिसका नाश अग्नि भी नहीं कर सकती। पुत्रकी जीभ पर सोनेकी शलाकासे 'ओम्' लिखते समय मानो यह प्रकट किया जाता है कि हे बालक सोनेसे अधिक मूल्यवान् सदा उज्वल रहनेवाला धन आत्मिक धन है और वह ओम् है। वैदिक माता पिता अपने प्यारे पुत्री पुत्रको पहिले पहिल कोई सम्पत्ति, कोई धन, और कोई वस्तु देते हैं कि जो बच्चेको दूध देनेसे भी प्रथम देनी लिखी है, तो वह आत्मिक सम्पत्ति है। परमात्माका "ओम्" नाम है ॥

सुवर्ण का रंग सब रंगों में उत्तम रंग है, प्रभात में उषामें सुवर्ण रंग ही की झलक होती है, जिससे सारे संसार के कवि इस पर मोहित हैं मन को मुग्ध बना देनेवाला सन्ध्या का सौन्दर्य्य, सुवर्ण परिष्कार के कारण ही कविता में इतना ऊंचा पद पा गया है। सब ऋतुओं का राजा बसन्त समझा जाता है

उसका वेष भी सुवर्ण रंग से रंगा गया है। आर्य्यों में विवाह के समय केशरी वस्त्रधारण किए जाते हैं। अथवा उत्तम रंग जानकर उस के छींटे दिए जाते हैं। आर्य राजपूत संग्राम जाते समय केशरिया भेष धारण किया करते थे। केशर का रंग भी सुवर्ण के रंग के समान है। इस लिए उक्त समयों के वेषों से प्रकट किया जाता है। कि सर्वोत्तम प्रसन्नता के भाव सुवर्णमय हैं। कर्तव्य परायण वीर क्षत्रिय के भाव सुवर्ण रंग रंजित हैं॥

आदर्श जीवन, मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम और ज्ञानसागर श्रीकृष्ण भी केशरीही दुपट्टा पैहरा करते थे। इस से यह कल्पना हो सकती है कि सर्वोत्तम कर्म योग के विचारों युक्त आत्माओं और विशुद्ध आत्मज्ञानियों को भी सुवर्ण रंग ही प्रिय लगता है। लगना चाहिए भी, क्योंकि सुवर्णमय आचार, कर्तव्य कर्मयोग है। सुवर्णमय विचार, संकल्प और भाव आत्म-ज्ञान के लक्षण हैं। आर्य्य देश के लोग देवताओं पर भी केशर चढ़ाते हुए मानों यह प्रदर्शित कर रहे हैं, कि किसी का पूजन किसी की विनय करना सुवर्ण रूप विचारवान् व्यक्ति का ही काम है॥

आत्मवादियों के मत में प्रातःकाल जागते समय ही, नेत्र बन्द करके प्रभु का नाम जपते हुए सुवर्ण रंग देखने का यत्न करना चाहिए। प्रसन्नता, सफलता, और नीरोगता का रंग सुवर्ण है यदि सुवर्ण रंग स्थिरता मे दीखने लगजाय, तो तन मन में प्रसन्नता की वृद्धि और स्थिति लाभ होती है। प्रभात में

जानना और धर्म अर्थ आदि का चिन्तन करना मनु भगवान् ने बताया है, ऐसे सुवर्ण समय में सुवर्ण विचारों का उदय होना बहुत सम्भव है ।

प्रातः और सायंकाल का सूर्य सुवर्ण पिंड के समान दीख पड़ता है पर्वत शिखर पर से अथवा सागर गत जहाज़ में से जिस किसी को कभी सूर्योदय अथवा सूर्यास्त का दृश्य देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ हो, वह मुक्त कण्ठ से कहेगा, कि उस समय सूर्य्य देव सुवर्ण स्वरूप बने हुए होते हैं, और ऐसा प्रतीत होता है, कि मानो पूर्व अथवा पश्चिम में कोई लम्बा चौड़ा सुवर्ण पर्वत निकल गया है । शास्त्रों के धर्म ग्रन्थों में प्रातः पूर्वाभिमुख और सायं पश्चिमाभिमुख होकर सन्ध्या करने का विधान है । सूर्य्याभिमुख होकर सन्ध्या करने पर शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक अनेक लाभ हैं । सन्ध्या रूप सुवर्ण विचार सुवर्ण आचार में जब एक भक्त निमग्न हो, उसके लिए कितनी आनन्द की बात है, कि जिस समय में सन्ध्या जपता है, वह सुवर्णमय, जिस ओर उसका मुख है, वह दिशा अपने स्वामी समेत सुवर्ण रूपा हो रही है, अन्दर बाहर सर्वत्र सुवर्ण ही सुवर्ण विराजित है ॥

सुवर्ण रंग का महत्व इस से अधिक कोई क्या कहेगा कि जिन सर्वत्यागी वीतराग संन्यासियों ने तामस, राजस वृत्तियों को शमन करके विशुद्ध सत्वगुण की सुवर्णमयी ज्योति को लाभ किया, वस्त्र रंगने के लिए उन्हें भी सुवर्ण सा कुसुम्भिया अथवा गेरुआ रंग ही अच्छा लगा ॥

ऊपर कहे गुणों, कीर्त्ति और महत्व की मूर्ति और अवतार सुवर्ण है। उस सुवर्ण की लेखनी से लिखने योग्य शब्द 'ओ३म्' के विना कौन हो सकता है। ठीक है, महेश्वर के नाम के आगे महेश्वरी-माया ही को माथा टेकना चाहिए। मनुष्य सोने के सुन्दर स्वरूप के सामने सारे संसार के स्वामी को विस्मरण न करे, न छोड़े, किन्तु शोभा के धाम सोने को उस के नाम पर से वारे। सोने को उसके नाम के आगे झुकाए, और सोना उसका नाम लिखने के लिए घिसाये ॥

पुत्र पुत्री की जिह्वा पर सबसे प्रथम 'ओ३म्' लिखने का यह भी तात्पर्य्य समझना चाहिए कि बच्चे को सब से पहिले 'ओ३म्' शब्द ही सिखाना उचित है, ऐसा करना एक तो सन्तान पर शुभ संस्कार डालना है, दूसरे 'ओम्' अतीव कोमल होने से बच्चे को उच्चारण करना सुगम है, ओ ओ तो प्रत्येक बच्चा पुकारा करता ही है, केवल होंठ बन्द करना ही शेष रहता है, और वह भी बच्चे के लिए कोई कठिन काम नहीं। उन माता पिताओं को अपना सौभाग्य समझना चाहिए, जिन की सन्तान बाल्य काल से आस्तिक भाव के संस्कारों के रंग में रंगी जाय, वह सन्तान भी पुण्यवान् है जिसको पैतृक सम्पत्ति की भांति ईश्वर की भक्ति, ईश्वर का नाम माता पिता से प्राप्त हुआ है। माता पिता की ओर से इससे बढ़कर सन्तान को देने की कोई वस्तु नहीं, और यह पितृ ऋण का बड़ा भाग है, जिसे सन्तान ने आजन्म स्मरण रखना है ॥

अन्तकाल में ओ३म् स्मरण ॥

"ओम् क्रतोस्मर" वेद आज्ञा करता है, कि हे मनुष्य ! तेरा आत्मा निकल जाने पर यह देह अन्त में भस्म है, अतएव 'ओम्' का स्मरण कर। गीता में श्री कृष्ण ने कहा कि जो मनुष्य मरण समय भी 'ओम्' का स्मरण करता है, वह परम गति को लाभ कर लेता है। महाभारत में कहा है कि जब द्रोणाचार्य पर धृष्टद्युम्न ने प्रबल प्रहार किया तो आचार्य सम्भल न सके, तन पिंजरे से उनके प्राण पखेरू उड़ने लगे, उसी समय, समर भूमि में, ज्ञानी ब्राह्मण ने ओम् में ध्यान लगाना आरम्भ किया और अन्त में मरण धर्म देह को छोड़ कर उनका आत्मा 'ओम्' की सीढ़ी से स्वर्गारोहण कर गया ॥

जिस मनुष्य का अन्त सुधर गया, उसका सब कुछ सुधर गया। महात्माओं के मन में जिसकी मति अन्त में भी 'ओम्' में लगजाय उसका नाश नहीं होता। परन्तु मोह माया में फंसे हुए मनुष्य के लिए अन्त का समय अपने आप सुधारना कोई सुगम बात नहीं है। अन्त सुधारना सन्तान का काम है। पितरों के लिए अन्त समय सन्तान सहारा है, स्वर्ग का द्वार है। जैसे डूबते हुए मनुष्य का आप ही आप किनारे आजाना बड़ा कठिन है, ऐसे ही मरण काल में मोह माया के सागर में डूबते जन का धर्म्म धरती पर आ लगना महा कठिन है। मृत्यु और मोह सागर में डूबते को बचाने वाला कोई और ही चाहिए ॥

पितृऋण उतारना सुसन्तान का परम कर्म है । उस के उतारने के भी कई मार्ग हैं । सन्तान को सुयोग्य बनाना, गृह धर्म का पालन करना, कुल धर्मों को निभाना, आदि सब कार्य पितृ ऋण उतारने के छोटे २ भाग हैं । पर सबसे बड़ा, सब से उत्तम साधन पितरों को भगवान् का नाम स्मरण कराना है; उन्हें आत्म चिन्तन कराना है । सन्तान का जन्म होते ही पितरों ने जो 'ओम्' नाम का दान दिया था, सो उन के सदा के प्रस्थान समय यह 'ओम्' नाम बार २ उन की जीभ पर रखना चाहिए, और उन्हें स्मरण कराना चाहिए ॥

संसार ओम् रूप है ॥

अ—उ—और—म् इन अक्षरों से ओम् बना है । ज्ञानियों की कल्पना में ओम् के तीन अक्षर ईश्वर, जीव और प्रकृति इन तीन अनादि पदार्थों के प्रतिनिधि भी हैं, 'अ' से ईश्वर 'उ' से जीवात्मा और 'म्' से माया प्रकृति का ग्रहण किया जाता है । जैसे 'अ' 'उ' और 'म्' के मिलाप से ओम् बना है, ऐसे ही ईश्वर, जीव और प्रकृति से इस अनन्त विश्व की रचना हुई है ॥ ओम् की रचना में जिस प्रकार 'अ' और 'म्' के मध्य 'उ' की स्थिति है, उसी प्रकार ईश्वर और माया के बीच विचरने वाला जीवात्मा है । अक्षरों में 'अ' 'उ' ये दोनों अक्षर स्वर हैं, परन्तु 'म्' व्यञ्जन है । स्वर स्वतन्त्र अक्षर होते हैं, और व्यञ्जन अक्षर स्वरों के अधीन होकर बोले जाते हैं । जब तक व्यञ्जन अक्षर में कोई स्वर न हो, वह बोले

नहीं जा सकता । विश्व में भी परमेश्वर और जीवात्मा ये दो स्वतन्त्र पदार्थ हैं । ये अपनी सत्ता और चेतनता से स्वयं प्रकाशित होते हैं, परन्तु कारण रूपा प्रकृति में यदि ईश्वरेच्छा और जीवात्मा का प्रवेश न हो, तो यह कार्य रूप में कभी भी प्रकट नहीं हो सकती ॥

'अ' और 'म्' इन दोनों का मध्यवर्त्ती 'उ' अक्षर यदि 'म्' में मिलजाय तो उसकी दशा 'मुख' मुँह आदि शब्दों के 'म्' में मिले 'उ' की सी हो जाती है । 'उ' नीचे पड़ा हुआ है और व्यञ्जन, शक्तिहीन 'म्' उसके सिर पर सवार है । विश्व रचना में भी यही समझना चाहिए कि जब स्वर अक्षरवत् स्वतन्त्र जीवात्मा, अविद्या वश, अपने आप को भूल जाता है, और परमात्मा को छोड़कर प्रकृति–माया और इस लोक ही को सब कुछ समझने लग जाता है, तो यह माया उकार अक्षर के सिर पर 'म्' व्यञ्जन अक्षर की भांति जीवात्मा के सिर पर बैठ जाती है; इस को अपना दास बना लेती है, और जन्म जन्मान्तर के ऊंच नीच नाना नाच नचाती रहती है ॥

और यदि अकार और 'म्' का मध्य स्थित उकार अक्षर, आदि अक्षर 'अ' में जा मिले तो दोनों मिलकर 'ओ' बन जाते हैं । एक रूप और एक स्वर होजाता है । 'ओ' के पास यदि व्यञ्जन 'म्' आ भी जावे, तो भी 'अ' में मिले 'उ' को छू नहीं सकता, किन्तु 'ओम्' अथवा ओ के व्यञ्जन 'म्' वा बिन्दु की भांति पृथक् ही पड़ा रहेगा । ऐसे ही जीवात्मा, परमात्मदेव की उपासना करके जब परमात्मा की प्राप्ति कर

लेता है, तब इस का स्वरूप परमात्मा के गुणों में पूर्ण होजाता है। परमानन्द में निमग्न आत्मा को माया बांध नहीं सकती उसका स्पर्श नहीं कर सकती, किन्तु ऊपर कहे हुए 'म्' व्यञ्जन अनुस्वार की भांति शक्तिहीन माया, शून्यवत् माया अकिञ्चित् करा हो जाती है ॥

अकार अक्षर यदि 'म्' व्यञ्जन में मिलजाए तो उसका रूप 'म' इस प्रकार का होता है। 'म्' में मिला हुआ उकार तो स्पष्ट दीख पड़ता है, परन्तु अकार दिखाई नहीं देता। आखों का विषय नहीं रहता; केवल मन बुद्धि ही से जाना जाता है, कि "राम" शब्द के 'म' में अकार है; ऐसे ही समझना चाहिए कि परमेश्वर देव 'म, में के अकार की भांति प्रत्येक परमाणु, एक २ पत्ते और अखिल पदार्थों में रमे हुए हैं, परन्तु इन्द्रियों से ग्रहण नहीं होसकते। भक्त लोग अपने ज्ञान, श्रद्धा और विश्वास ही से ईश्वर सत्ता को सर्वत्र विद्यमान जानते और मानते हैं ॥

नाम नामी का सम्बन्ध ॥

"ओ३म्" अक्षर परमात्मा का नाम है, वाचक है, और सर्वत्र रमी हुई चेतन सत्ता, ज्ञान तथा आनन्दपूर्ण सत्ता इस का नामी और वाच्य है। ओम् शब्द है और सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा इसका अर्थ है। जैसे जल शब्द का अर्थ द्रवीभूत, पतला, शीत-स्पर्शवान् पदार्थ है, अग्नि शब्द का अर्थ उष्ण-स्पर्श युक्त, तेजोमय पदार्थ है, ऐसे ब्रह्मवस्तु ही 'ओम्' का अर्थ है।

वाच्य वाचक का, शब्द और अर्थ का नित्य सम्बन्ध है। जैसे गुण गुणी में रहता है, ऐसे वाच्य—वाचक में, अर्थ शब्द में रहता है। भक्ति भाव से भरपूर हृदय युक्त भक्तों को यह निश्चय होना चाहिए कि जिस प्रकार अग्नि में रूप और उष्ण स्पर्श, जल में रस और शीत स्पर्श नित्य रहता है, इसी प्रकार ओम् वाचक में इस का वाच्य, ओम् शब्द ही में इस का अर्थ नित्यता से रहता है; कभी भी पृथक् नहीं होता॥

कल्पना करो कि एक मन्दिरमें प्रज्ञाचक्षुओंकी एक मण्डली विराजमान है। एक देव नाम पुरुष को कार्य्यवश वहां जाना पड़ा है। किसी व्यक्ति के आने की आहट सुन कर वे सारे सूरदास उस के आस पास चारों ओर बैठ जाते हैं। एक सूरदास आगे हाथ फैला कर देव को अङ्गुली से पकड़ कर पूछता है कि आप कौन हैं? उत्तर मिलता है "मैं हूं देव ऐसे ही कोई भुजा, कोई पांव और कोई शिर आदि छूकर नाम पूछ रहा है, और वह आगन्तुक सब को "मैं देव हूं'- यही उत्तर देता चला जाता है। तात्पर्य्य यह है कि देव नाम एक व्यक्ति का है। हाथ, भुजा और शिर से पांव तक सारे अङ्ग उस व्यक्ति के अङ्ग हैं। सारे अङ्गों का समुच्चय वह व्यक्ति है, इसलिए जिस भी अङ्ग को, उस व्यक्ति के जिस भी देश को स्पर्श करोगे उसी अङ्ग और देश में 'देव' इस संज्ञा की व्याप्ति है। जितने देश में नामी होगा उतने ही देश में उस का नाम भी होगा॥

परमात्मा सर्वत्र परिपूर्ण है। हमारे मन और अन्तःकरण

में विद्यमान है; हमारी बुद्धि में भी उस का प्रकाश है । जिस मनो मन्दिर में हम 'ओम्' जपते हैं, जिस कण्ठ से 'ओम्' की ध्वनि गूंजती है, जिस जीभ पर 'ओम्' नाम विलास करता है, और जिन कानों में 'ओम्' की पवित्र ध्वनि पड़ती है. उन सब अङ्गों में परमात्मदेव परिपूर्ण-रूप से विराजमान हैं । हमारी अस्थि, मज्जा और रोम २ में रमा हुआ है; और तो क्या कहें, ओम् शब्द में ओम् ध्वनि में भी परमात्मा परिपूर्ण है ॥

जप काल में भक्त को यह दृढ़ विश्वास होना आवश्यक है, कि ईश्वर मेरे समीपतम है, वह मेरी प्रत्येक स्फुरणा को देख रहा है । जब मैं 'ओम्, शब्द का उच्चारण करता हूं तभी वह परम प्रेम-मय गुरु मुझे आशीर्वाद देता है, और मुझ पर परम प्रसन्न होता है ॥

"तज्जपस्तदर्थभावनम्"

उस 'ओम्' अक्षरका जप और 'ओम्' अक्षरका अर्थ चिन्तन करनेसे चित्त एकाग्र हो जाता है । प्रणव का जप और प्रणवके अर्थोंका चिन्तन भक्तिधर्म है । जपसे ईश्वर में प्रेम उत्पन्न हो जाता है । विश्वास की मात्रा बढ़ जाने से भक्त भगवान की कृपा का भागी बन जाता है । "प्रणिधानाद्भक्तिविशेषादावर्जित ईश्वरस्तमनुगृह्णाति,, व्यासदेवने कहा है, कि "भक्ति से आराधन किया हुआ ईश्वर भक्त पर अनुग्रह करता है ,, इस लिए 'ओम्' के जप में मन को लगाना, उस से भक्ति भावको बढाना और अन्तमें ईश्वर अनुग्रहका पात्र बनना, योग के जिज्ञासु मुमुक्षुओंका परम कर्त्तव्य है । यह

निश्चित समझना चाहिए कि यह मार्ग, योग का सर्वोत्तम साधक है, और परम योगी व्यासदेवके कथनानुसार "अभिध्यान-मात्रेण,, ओम् का ध्यान करने ही से "योगिन आसन्नतमः समाधिलाभः फलञ्च भवति,, योगीको बहुत समीप (शीघ्र) समाधि का लाभ और फल मिल जाता है ॥

पर इस भक्ति में परम प्रेम अचल विश्वास दृढ़ धारणा और निर्दोष श्रद्धा चाहिए ॥

ओम् स्मर ॥

जिस नामका कोई जप करता है, उसमें उसका प्रेम अवश्य होता है । और जिसका उत्कट प्रेम किसीके हृदयमें होता है । उसके चित्तमें प्रेमीकी चितवन सदा बनी रहती है । चिन्तन शब्दका होता है, और शब्द नाम है, इसलिए चिन्तन करनेका अर्थ मानस जप है । यदि वाणीके साथ मन भी है, तो वाणीका जप बुरा नहीं है, अच्छा है, परन्तु फिर भी वाचिक जपकी अपेक्षा भगवान् मनुकी आज्ञानुसार बिना होंठ हिलाए जो जप किया जाता है, वह "उपांशु" जप है । और सौगुण अधिक फलदाता है । मानस जपका महत्व सहस्र गुण अधिक है । मानस जपमें जितना शीघ्र मन रुकता है उतना वाचिक और उपांशुमें नहीं । "तज्जपस्तदर्थभावनम्" इस पतंजलि सूत्रके अर्थमें व्यासदेव कहते हैं, कि "तदस्य योगिनः प्रणवं जपतः प्रणवार्थं च भावयतश्चित्तमेकाग्रं सम्पद्यते" प्रणवको जपते हुए, और प्रणवका अर्थ चिन्तन करते हुए इस योगीका चित्त एकाग्र हो जाता है । इस पर व्यासदेव ग्रन्थान्तरका प्रमाण देते हैं

"जपसे चिन्तन करे, और चिन्तन (ध्यान) के पश्चात् फिर जप करे, जप और ध्यानकी सिद्धिसे परमात्माका प्रकाश होता है॥

सहजाभ्यास।

श्वास प्रश्वासके साथ अथवा बिना सांसमें वृत्ति लगाए 'ओम्' का जाप, चिन्तन और ध्यान सहजाभ्यास है। इस अभ्यासका करना, आबाल वृद्ध, सबल, निर्बल, सब नर नारियों के लिए सहज है, सुगम है। अन्य अभ्यासके मार्गोंमें बहुत कठिनाइयां हैं। आठ पहर चौबीस घण्टे संसारके काम धन्धोंमें फंसे हुए स्त्री पुरुषों, बुढापेके बोझसे जर्जरीभूत जनों, दुर्बल, क्षीण, दीन हीन देह युक्त मनुष्यों, रोगके दारुण दुःखसे पीडित प्राणियों और कुसंगत, कुसंस्कार तथा विषय वासनासे सदा चलायमान चित्त वाले गृहस्थियोंसे कठिनता युक्त योग साधन सिद्ध होने कितने दुष्कर हैं, इसका समझना सबके लिए सुगम है। अतएव संसार समुद्रमें जपयोगका जहाज एक ऐसा जहाज है कि जिसमें बैठकर राजा, रंक, मूर्ख, पंडित, लूला, लंगड़ा, गूंगा, बहरा, दुर्बल, दुःखिया और बूढा, बच्चा, सभी पार जा सकते हैं। इस साधनके सभी अधिकारी हैं। इस साधनके साधनेसे अन्य सारे साधन आपसे आप सिद्ध होने लग जाते हैं। सारे गुण सम्पूर्ण कल्याण और सर्व सफलताएं इसके अभ्यासीमें ऐसे प्रवेश करने लग जाती हैं जैसे महासागरमें नदियां।

प्रणवके उपासकको चाहिए कि प्रातःकाल नींदसे जागते ही हृदय क्षेत्रमें विचार मात्र उत्पन्न होनेसे पहिले ओम्का जप करने लग जाय, तत्पश्चात् आवश्यक कार्य्योंसे निवृत्त होकर

सन्ध्या समय भी प्रणवका पाठ करे। प्रति दिन नियम पूर्वक दो घड़ी पर्यन्त प्रणव पवित्रका पाठ करनेवाले अभ्यासीको प्रभु प्रेमका परिणाम स्वयं प्रतीत होने लगेगा। प्रणव पाठका सर्वोत्तम समय आधीरात, वनस्थान और प्रातःकाल है। पर परम प्रेममें समयकी मर्य्यादा और नियम नहीं रहता, इसलिए चलते फिरते उठते, बैठते जब अवसर हाथ आवे अपने मनके तीरको प्रणवके लक्ष्यमें खींच २ कर लगाते रहना चाहिए। चारपाई पर पड़े २ जब तक नींद न आवे, ओम्‌का ध्यान करते रहना बड़ा उपयोगी है। एक तो इससे शीघ्र नींद आजाती है, दूसरे स्वप्न अथवा कुस्वप्न कम आते हैं, और तीसरे सर्वोत्कृष्ट लाभ यह है, कि अभ्यासी जब तक सोता रहेगा, तब तक प्रणव पवित्रका संस्कार उसके मस्तिष्कमें, उसके अन्तःकरणमें, उसके अन्तरात्मा (सब्जेक्टिव माईण्ड) में स्फुरित रहेगा, जिससे सारी काया भक्तिमयी हो जाती है। संम्पूर्ण खोटे संस्कार मिट जाते हैं। यहां तक इस साधनके सिद्ध होने पर बिना प्रयत्न किए प्रणव पाठ निरन्तर होता रहता है, और शरीर योगमय बन जाता है॥

परमात्माके प्रेमी जन जब किसी अद्भुत दृश्यको देखते हैं, जब किसी घटनाका अवलोकन करते हैं, तब वे उसी समय ओम्‌का लम्बायमान उच्चारण करते हैं, इससे मनको एक ऐसा प्रमोद प्राप्त होता है, जो केवल अभ्यास गम्य है। जिस समय चित्त चंचल हो, अशान्त हो, प्रमादसे पूर्ण हो, और प्रणव पाठसे परामुख होता जाता हो, तो उस समय भी 'ओम्' का दीर्घ उच्चारण इसे शान्त और स्थिर बना देता है। किसी

एकान्त स्थान, नदी के किनारे, शून्य जङ्गल, अथवा बनमें और जहां भी मनमें सङ्कोच उत्पन्न न हो, वहां प्रणव पवित्र का लम्बे स्वर से गायन और बार २ गायन मनकी सारी मलिनता को मिटाकर उसे शुद्ध स्थिर, प्रशान्त भाव प्रदान करता है। ऊपर कहे प्रणव गायन से भक्तके देह में आनन्द की एक विचित्र लहर उठती और सुख की एक अद्भुत धारा सी बह जाती है, जिसका वर्णन वर्णनातीत है ॥

प्रणव का बार २ पाठ ॥

जो शब्द बार २ कहे जाते हैं, वे स्मरण-शक्ति का अङ्ग बन जाते हैं। जितनी प्रबल लग्न से कोई शब्द बार २ स्मरण किया जाय, उसका उतना ही प्रबल प्रभाव स्मृति पर पड़ेगा। राग विद्या सीखने वाले लोग चलते, फिरते, कार्य्य करते, सङ्गीत के सुरों को ही अलापते रहते हैं। लग्न वाले विद्यार्थी अपने पाठों को स्वप्न में भी दोहराते रहते हैं। मनुष्य की चित्त वृत्तियां कुएँ के जल की भांति हैं। कुएँ में रहते पानी का कोई आकार नहीं, वह सम है, और एकही स्वाद वाला है, पर ज्यों ही रहट की घड़ियों द्वारा खेतों की त्रिकोण, चतुष्कोण आदि क्यारियों में पड़ता है, तो तुरन्त तदाकार होजाता है। मिर्च, निम्ब, नींबू, जामन, आम, नारङ्गी और सङ्गतरा आदि पेड़ों की जड़ों में जाकर अपना स्वाद भी बदल डालता है। चित्त वृत्तियां भी जैसे अर्थों वाले शब्दों में डोलती हैं, वैसे उनके आकार बन जाते हैं, और उन शब्दों के अर्थों के भावों और प्रभावों से सर्वथा प्रभावित होजाती हैं। जिस रस रङ्गके शब्द

कोई गायगा, वही रस रङ्ग उसकी चित्त चादर पर अवश्यमेव चढ़ जायगा, इसलिए समझना चाहिए, कि जो भक्त जन पूर्ण प्रेम और प्रबल भावना से भगवान के नाम प्रणव का स्मरण करते रहते हैं, कालान्तर में उनकी वृत्तियां प्रणवाकार होजाती हैं। उनकी स्मृति में न उतरने वाला प्रणव का रङ्ग और उनके मनमें न फीका होने वाला प्रणव का रस बस जाता है॥

नव सुत सिमरै सुरभि ज्यों, त्यों सुमिरो भगवान।
पनहारीं ज्यों कलश का, करो ओम् का ध्यान॥
सती विरह सन्तापिता, सुमिरे पति मन लाय।
ओम् नाम सिमरो सदा, संशय सकल मिटाय॥
भूखा भोजन को भजे रङ्क भजे ज्यों दाम।
सदा प्रेम से सिमरिए, ओम् ईश का नाम॥
मीन हीन जल से यथा, जल ही में मन दे।
एक भावना से तथा, ओम् नाम भज ले॥
आतुर सिमरे औषधि, ज्यों बंधुआ निस्तार।
ओम् नाम त्यों सिमरिये, तीन लोक का सार॥
मन मन्दिर में जगमगे, ओम् नाम जब जोत।
अघतम का तब नाश हो, बहे सुखों का स्रोत॥
रस है तीनों वेदका, ओम् नाम अभिराम।
भाव भक्ति से जो भजे, होवे पूरण काम॥

परमात्मा भीतर से प्रकाशित होता है॥

माना कि पानी २ कहने से प्यास नहीं बुझती, केवल रोटी के पाठ से भूख नहीं मिटती, और अग्नि शब्द के उच्चारण

से मुख नहीं जलने लग जाता, परन्तु इस वार्ता से किस बुद्धिमान् का नकार है, कि पानी २ आदि शब्दों की कोई तभी पुकार करता है, जब इन वस्तुओं के लिए उसके मन में महामांग होती है। कोई भी विचारसे देखे तो उसे प्रतीत होगा कि जगत् में जातियों की भौतिक प्रभुता के मधुर फल इस महामांग ही की बेल से मिले हैं। इसी मानस मांग में सारी उन्नति निवास करती है, और इसी मनोरथ रूप मांग से प्रेरित होकर मनुष्य उसकी प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील होता है॥

जो भक्त परमात्मदेव के परम पवित्र ओम् नाम में बार २ अपने मनको लगाते हैं, वे परमात्मदेव की प्राप्ति की, अपनी लग्न प्रकाशित करते हैं। बार २ नाम के पाठ से भक्त के चित्तमें समाई हुई अनन्त चेतन की चाह प्रकट होती है। बहुत से दूर स्थित प्राकृत पदार्थों के नामका पाठ फलसिद्धिरूप न हो, परन्तु फलसिद्धि का प्रबल निमित्त कारण और सिद्धि प्राप्तकर्त्ता की क्रिया का उपादान कारण अवश्यमेव है॥

परमात्म प्राप्ति की कथा भौतिक पदार्थों की प्राप्ति से सर्वथा भिन्न है। प्रकृति के स्थूल पदार्थ, कर्त्ता के मनसे प्रेरित, उसकी स्थूल इन्द्रियों की स्थूल क्रिया से प्राप्त होते हैं, क्योंकि प्राप्तकर्त्ता व्यक्तिसे बाहरके पदार्थ उसकी बाहरकी क्रियाकी अपेक्षा रखते हैं, परन्तु परमात्मा सूक्ष्मतम है, सबके भीतर परिपूर्ण है, इसलिए विवेक, विचार, ज्ञान और भक्ति आदि साधनों ही से उसकी प्राप्ति होती है, यह सर्व शास्त्र सम्मत सिद्धान्त है॥

उक्त विवेकादि साधन अन्तरङ्ग साधन हैं। ये साधन भक्त

के अपने आत्मा का प्रकाश हैं। सच तो यह है कि सबका अन्तरात्मा, परमात्मा भक्त के आत्म मन्दिरमें विराजमान है। उसकी प्राप्ति के लिए केवल प्रेम तैल से भरा हुआ ज्ञानका प्रदीप्त दीपक चाहिए। रोटी २ पुकारता हुआ भूखा भले ही भूखा रहजाय, क्योंकि उसका भोजन उससे दूर है, पर भक्त लोग तो जिस चित्त में ईश्वरका चिन्तन करते हैं, वहीं उनका आत्मिक भोजन है, और जिस रसना से सारे रसों के सार ओम् नाम को जपते हैं, उसी रसना में, उसी नाम में, परम तृप्तिकारक अमृत रस विद्यमान है। उस अमृत रस को अनुभव करने के लिए केवल अभ्यास की आवश्यकता है, और मानस तथा वाचिक जप ही का नाम, यहां अभ्यास है॥

"आत्मानं चेद्विजानीयादयमस्मीति पूरूषः"। बचपनसे भेड़ोंके गल्लेमें विचरने वाले सिंह पुत्रको अपने भीतर ही भूला हुआ सिंह-पन प्राप्त करनेके लिए 'मैं सिंह हूं' इस पाठको बार २ जपनेकी बड़ी आवश्यकता है। इसी पाठ स्मरणसे उसे विस्मृत सिंहसत्ता का बोध होगा। अपने आपको विनाशी और मरण धर्मा मानने वाले मनुष्यको उस अमर अविनाशी स्वरूपका बोध केवल ज्ञानसे सम्भव है। आत्मज्ञान आत्मगुणोंके बार २ चिन्तनसे होता है। "मैं अमर अविनाशी, अछेद्य, अभेद्य और चेतन हूं" इत्यादि आत्म स्वरूप बोधक शब्दोंके बार २ जापसे अपने भीतर भूला हुआ अपना स्वरूप अपने भीतर ही उपलब्ध होता है। सारांश यह कि जैसे अपने आपको विस्मृत सिंहको अपनी सत्ताका ज्ञान, आत्म स्मरणसे सम्भव है, और आत्माको आत्म-

बोध आत्मचिन्तनसे अपने भीतर होता है, ऐसे ही अपने अन्तरात्मामें व्यापक परमेश्वर देवका ज्ञान उसके सच्चिदानन्द आदि गुण युक्त ओम् नामके बार २ स्मरणाभ्याससे स्वात्मा ही में सम्भावित है। किसी शब्दका बार २ चिन्तन मानस जापके लिए पर्य्यायवाची शब्द मात्र ही समझना चाहिए॥

चिन्तन कर मम मना ओम् नाम अनमोल।
ज्योति जागती देख ले चित्त किंवाड़े खोल॥
चिन्तनके प्रभावसे कायर वीर हो जाय।
स्यार सिंह समता गहे भय भीरु में न आय॥
ऊंच नीच अच्छा बुरा सज्जन दुर्जन पाप।
जैसी जिसकी भावना वैसा हो वह आप॥
चित्तमें चिन्तन लग्नसे जिसमें जिसका हो।
कोटि विघ्नको वाभके निश्चय पहुंचे सो॥

"तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु" नाम प्रभाव॥

इस बातको सभी मनुष्य मानते हैं, कि अशुभ संकल्पों, अधम विचारों, नीचभावों, और अपवित्र चिन्तनोंके उत्पन्न होने पर मनुष्यका मन मैला हो जाता है। शुभ सङ्कल्पों और शुद्ध भाव आदिकोंके उत्पन्न होनेसे मनुष्यका मन निर्मलता और पवित्रता प्राप्त कर लेता है। किसी दुष्ट नर नारीके स्मरणसे चित्त सागरमें पापके तरङ्गका उत्पन्न होना बहुत ही सम्भावित है, ऐसे किसी सन्त, सज्जन, भगवद्भक्त व्यक्तिके ध्यानसे अपने भीतर शुभ भाव, शुभ सङ्कल्प और सज्जनताकी लहरोंका उठना स्वाभाविक है। सभी गुणोंके समूह पवित्र ओम् नामके समान

शुद्ध और निर्मल दूसरा कोई सङ्कल्प, कोई भाव, कोई चिन्तन और विचार नहीं है । अन्तःकरणकी सम्पूर्ण वृत्तियोंमें सर्वोत्तम वृत्ति, परम पवित्र वृत्ति—भक्ति वृत्ति है । परम पवित्र परमात्म देव हैं, अतएव ओम् पवित्रके चिन्तन मात्रसे मनुष्यके मनमें पवित्रताकी धारा वहने लगती है । मनकी मलिनता धुल२ कर दूर होने लग जाता है । ओम् नामका प्रभाव सम्पूर्ण प्रभावोंसे प्रवल है ॥

विषूचिकादि महारोगोंके दिनोंमें सर्व साधारणको वैद्य लोग शिक्षा दिया करते हैं कि महारोगका ध्यान व चिन्तन नहीं करना चाहिए । इसके ध्यानसे हृदय दुर्बल होने लगता है । इसकी रुचि रोगकी ओर झुक पड़ती है, और अन्तमें मनुष्य रोगके पंजे में पड़ जाता है । प्रसिद्ध वैद्य मण्डलमें यह वाद माना गया है कि रोगोंका बीज रोगोंका ध्यान है। जो प्रत्येक पदार्थके उपयोग में वात, पित्त, कफकी प्रतिमा देखते रहते हैं, जो पांव २ पर शकुन सोचते रहते हैं, जो वात २ में शीत उष्णका विचार रखते हैं, मित्र मण्डलमें बैठ कर जो अपने रोगोंकी कथाएं किया करते हैं, और जिनकी कायामें रोगके नाम मात्रसे कपकपी तथा फुरफुरी उठती है, वे लोग अपने ऊंचे स्वरसे रोगोंको निमन्त्रण देते हैं। नाना रोग उनकी देहमें बने ही रहते हैं । देशी विदेशी सब चिकित्सा कर लेने पर भी उनका पिण्ड छूटने नहीं पाता ॥

जब रोगके ध्यानका इतना प्रभाव है, कि उसका चिर तक ध्यान रहनेसे हमारी देहका सर्वनाश तक संभव हो सकता तो क्या कोई भी ऐसा विश्वासी होगा, जो यह मानता हो कि ओ

के चिन्तन और ओम् नामके ध्यानका प्रभाव हमारी काया हमारे अन्तःकरण और आत्मा पर कुछ भी नहीं पड़ता ? और यह ध्यान रोगके ध्यानसे भी गया बीता है ? अहो ! जिस ओम्के ईक्षण (इच्छा) परमाणु २ तक प्रभावित है, और जो सबका अन्तरात्मा है, उसके चिन्तन और ध्यानके प्रभाव सदृश अन्य किस वस्तुका प्रभाव हो सकता है ॥

सर्व साधारणकी यह मानी हुई बात है, कि खोटे संस्कारों से मनुष्यका मन मलीन होजाता है। किसीको कुवचन कहने से और गाली देनेसे मनुष्यका हृदय दूषित और अन्तःकरण कलुषित हो जाता है। इसी प्रकार जब किसी जन पर शुभ संस्कार डाले जायेंगे, तो वह शुद्ध हो जायगा, उसके मनसे कुसंस्कारोंकी धूल धुल जायगी। शुभ शब्द उच्चारण करनेसे पवित्र पदोंके पाठसे, सत्य हित और मधुर वचन बोलनेसे मनुष्यके अन्तःकरणकी कालिख और हृदयकी अपवित्रता अवश्य-मेव दूर होवेगी ॥

'ओम्' सचाइयों का केन्द्र, परम पवित्रताओं का प्रवाह और सकल शुभ संस्कारों का मूल कारण है, इस लिए जो पवित्रता, जो विमलता, जो शुभ, ओम गान, ओम् जप, ओम् चिन्तन, ओम् आराधन और ओम् ध्यान से प्रभु प्रेमी को प्राप्त होता है, वह अतुल है; वर्णन से बाहर है; केवल अभ्यासी जन उसे जान सकते हैं ॥

महा मिथ्यावादी के साथ यदि असत्य वचन से व्यवहार किया जाय, तो वह खिजने लगता है। छली, कपटी, दम्भी,

कुसंस्कारी से भी यदि छलादि से कोई वर्ते, तो उस के क्रोध की कोई सीमा नहीं रहती । कितनाही कोई गन्दी गाली बकने वाला क्यों न हो, पर अपने लिए गाली सुनना पसन्द नहीं करता । रात दिन दूसरोंकी मार धाड़, लूट खसूट में सुख मनाने वाले तस्करादि अत्याचारी जन, जब उनके सङ्ग ऐसा वर्त्ताव होने लगे, तब मरने मारने पर उतर आते हैं, और अपवित्र से अपवित्र मनुष्य भी अपने लिए अपवित्रता स्वीकार नहीं करता, इससे पण्डित लोग इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि सारे संसार में किसीभी मनुष्य की सहानुभूति पाप, अपवित्रता और अशुभ के साथ नहीं है, क्योंकि प्रत्येक स्त्री पुरुष अपने लिए दूसरों से शुभ चाहते, पुण्य कर्म मांगते, और पवित्र व्यवहारकी प्रतीक्षा करते हैं, और यह भी सभी जानते हैं, कि रोग मात्रको कोई नहीं चाहता । किसी रोगसे कोई भी जन सहानुभूति नहीं करता ॥

जब मरुस्थल में खड़े एक क्षुद्र पेड़ के पत्ते पर पड़े हुए जल बिन्दुकी भांति, पापमय सङ्कल्प, अशुभ वचन, मलिन विचार, दुष्ट संस्कार और सम्पूर्ण रोग निःस्सहाय हैं, सहानुभूति रहित हैं परन्तु तब भी इनका प्रभाव इतना प्रबल माना जाता है कि इनके चिन्तन और ध्यानादि ही से मनुष्य अपवित्र मलीन तथा रोगी होजाता है । तब सोचना चाहिए, कि उस 'ओम्' के चिन्तन, जप और ध्यान का कितना प्रबल प्रभाव होगा, जिसके साथ सारे संसारकी सहानुभूति है । सब सन्तोंके शुभ सङ्कल्प, सकल महात्माओंकी मङ्गल कामनाएं, अखिल

भक्तोंकी शुद्ध भावनाएं हैं, और जिनके सर्वोपरि सहायक परमात्म देव स्वयं हैं ॥

ओम् उपासना का फल ॥

सकल अदृश्य अमूर्त्त पदार्थोंका ज्ञान शब्द द्वारा होता है, इस लिए ओम् नामका स्मरण ईश्वरके ज्ञानकी प्राप्तिका एक मात्र कारण है। यह स्मरण शुभ और पवित्रता प्रदान करता है। इस ओम् जपगङ्गामें स्नान करनेसे मनके सारे मल उतर जाते हैं। पूर्व जीवनमें कितना ही कोई पापी क्यों न रहा हो; पर ओम् के निरन्तर पाठसे पवित्र हो जायगा। ओम् ध्यानसे "प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च" अन्तरात्माका ज्ञान, प्राप्ति और रोगादि विघ्नोंका विनाश होगा। श्वेताश्वतर उपनिषद् में कहा है "अपनी देह (हृदय) को अरणी लकड़ी बनाकर ओम् नाम को दूसरी अरणि बनावे। इन दोनोंको बार २ रगड़ने (हृदयसे ओम् जपने) से परमात्म देवके दर्शन करे।" इस नामके अभ्यासीके नेत्र पलासके पत्तेकी भांति विस्तृत और खिले हुए दिखाई देंगे। उनमें प्रेम परिपूर्ण होगा, ओम् भक्तका मुख पद्म प्रफुल्लित सौम्य, और तेजोमय रहेगा। ओम् उपासक की वाणी मधुवर्षिणी और आकर्षिणी होगी। और ओम् आश्रितका हृदय प्रसन्नतासे भरपूर हो जायगा ॥

जैसे चुम्बकसे मिले कर लोहाभी चुम्बक होजाता है, ऐसे ही ओम्की उपासनासे उपासक परमात्म देवके दिव्य गुणोंको धारण करके परमानन्दको उपलब्ध कर लेता है ॥

ओम्! ओम्!! ओम्!!!

ओम् प्रेम हो भक्तमें, जैसे चांद चकोर।
एक तार देखे उसे, करे सायंसे भोर॥
नाचे सुनके मेघका, जैसे नाद मयूर।
सारे तनमें ओम्से, बढ़े प्रेमका पूर॥
आकर्षित होवे यथा, लोह चुम्बकको पा।
तथा ओम्के ध्यानमें, खिंच जाइए मन ला॥
सांस बांस पर गमागम, करे गाड़ दिल बीच।
ओम् शृङ्खला बांधके, मन कर्ण आंखें मीच॥
तुला ध्यानकी धारिये, पलड़े प्राणापान।
शब्द रत्न तोलो तहां, चित्त वृत्तिको तान॥
बहती धारा चित्तकी, उलटि यही प्रपात।
प्रकटे त्रिकुटी कुण्डमें, सौदामिनि संघात॥
पुतली धनुको तान कर, मारिए नामका तीर।
दर्शन सुन्दर ज्योतिका, हरे पापकी पीर॥

——***——

—*:[इति]:*—